संत कबीरदासः साहित्यिक परिचय एवं दार्शनिक सिद्धांत

डॉ0 शिल्पी श्रीवास्तव
सी–12, साउथ सिटी
रायबरेली रोड, लखनऊ–226025, उ0प्र0, भारत
dksflow@hotmail.com

सार

प्रस्तुत शोध पत्र में मध्यकाल के महाकवि संत कबीरदास जी के जीवन वृत्त, उनका साहित्य एवं उनके दाशंनिक सिद्धांतों का काव्यात्मक दृष्टि से अत्यन्त बारींकी व सूक्ष्मता के साथ गहन अध्ययन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया गया है।

1 कबीर : जीवन वृत्त

आज के कवियों की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति(आत्म प्रशंसा और आत्म मुग्धता) के विपरीत संत कबीर के समय का मानस समष्टिमूलकता की ओर झुका हुआ था। इसीलिये आज का कवि जहाँ समाज से ज्यादा आत्मप्रकाशन(सूक्ष्म नहीं स्थूल) में लगा हुआ है, वहीं कबीर के समय के कवियों और लेखकों की दृष्टि समाज पर ही केन्द्रित थी। समाज की विषमताओं की दारुण व्यथाओं से उन्हें इतनी फुर्सत नहीं मिली थी कि वे स्वयं के सुख की परिकल्पना करते। इस प्रवृत्ति का फायदा तो हुआ लेकिन एक भारी नुकसान यह हुआ कि हमें इन कवियों, विशेषकर कबीर के जीवनवृत्त की प्रामाणिक जानकारी से वंचित हो जाना पड़ा है। यही कारण है कबीरदास जैसे एक अनुकरणीय और श्लाघनीय व्यक्तित्व का सम्यक् परिचय अनुपलब्ध रहा है।

मध्यकाल के अन्य प्रमुख संतों की तरह ही महाकवि कबीर दास का जीवन वृत्त भी श्रद्धा– संवलित जनश्रुतियों, साम्प्रदायिक आग्रहों, मिथिकीय स्वीकृतियों तथा अलौकिक और चमत्कारिक घटनाओं के भँवर में पूरे व्यक्तित्व की मुकम्मल पहचान से वंचित रहा है। कबीर दास जी के जीवन वृत्त पर हिन्दी और अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने पर्याप्त शोध किया है लेकिन उनमें मतैक्य नहीं है। डॉ0 रामचन्द्र तिवारी[1] ने सुविधा की दृष्टि से कबीर के जीवन वृत्त को समझने में सहायता प्रदान करने के आग्रह से अपने पूर्व के अध्येताओं द्वारा प्रस्तुत आधारभूत सामग्री के आधार पर दो वर्गों में रखा है– अन्तस्साक्ष्य और वहिस्साक्ष्य। पुनः वहिस्साक्ष्य को भी चार वर्गों में प्रस्तुत किया गया है–

1. प्राचीन धार्मिक साहित्य।
2. साम्प्रदायिक साहित्य।
3. इतिहास ग्रन्थ।
4. संतों और भक्तों के स्फुट उल्लेख।

अन्तस्साक्ष्य के अंतर्गत डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने कुछ ग्रन्थों पर ही केन्द्रित रहने का सुझाव दिया है–

" इस सन्दर्भ में अधिक से अधिक गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत कबीर वाणी, कबीर बीजक और कतिपय मान्य विद्वानों द्वारा सम्पादित कबीर ग्रन्थावलियों पर भी निर्भर किया जा सकता है।" [2]

डॉ0 रामचन्द्र तिवारी का वर्गीकरण सुविधाजनक तो है परन्तु सर्वथा निर्दोष और पूर्ण नही, क्योंकि वहिस्साक्ष्य के आधार पर जो वर्गीकरण उन्होंने किया है उसमें अधिकतर साम्प्रदायिक मतों का आग्रह एवं श्रद्धा–संवलित उक्तियों की ही भरमार है। उसमें कितनी सच्चाई और प्रामाणिकता है यह कुछ भी ठीक से

कहा नही जा सकता। अन्तस्साक्ष्य के रूप में उन्होंने जो संकेत किये हैं वह अधिक सारगर्भित है। आगे चलकर डॉ0 तिवारी ने आधारभूत सामग्री की जो समीक्षा की है वह अवश्य उनकी ईमानदारी का प्रतीक है। यह समस्त सामग्री श्रद्धाभाव से प्रस्तुत है। इसमें शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव है। अर्वाचीन इतिहासकारों का सारा विमर्ष जनश्रुतियों के बीच भटक कर रह गया है। संत कबीर दास के जीवन वृत्त सम्बंधी शेष बातें परवर्ती हैं और मुख्यतः जनश्रुतियों पर आधारित होने के कारण पूर्णतः विश्वसनीय नहीं है ।[3]

अतः तय है कि कबीर साहब के जीवन वृत्त का अध्ययन पर्याप्त शोध एवं संतुलित दृष्टि की मांग करता है। अनेक अध्ययनकर्ताओं की खोज रिपोर्टों और निस्कर्षों की[2, 3] परीक्षा करने के उपरांत भी हमें कुछ न कुछ संदेह रह जाता है लेकिन फिर भी यह अध्ययन इतना रोचक और मूल्यवान है कि पुनः इसकी आवश्यकता महसूस होती रही है।

अब मैं कबीर दास जी के जीवन वृत्त को समझने में सहायक भिन्न–भिन्न पक्षों पर अलग अलग देखने की कोशिश करूँगी क्योंकि ये अवयव ही पूरे कबीर–व्यक्तित्व की पहचान हो सकते हैं।

जन्म तिथि–एक विचार/ बीज का उदय/ अंकुरण

कबीर दास जी के आविर्भाव काल का निर्णय करने के लिए डॉ0 तारकनाथ बाली द्वारा उपलब्ध सामग्री को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।[4]

1. अन्तस्साक्ष्य।
2. साम्प्रदायिक सामग्री।
3. प्राचीन ग्रन्थों एवं विद्वानों के अभिमत।

अन्तस्साक्ष्य की दृष्टि से संत कबीर ने केवल दो प्रसंगों–काजी द्वारा हाथी चलवाने तथा लोहे की जंजीरों से बंधवाकर गंगा में डुबोने के प्रयत्न का वर्णन किया है। सिकन्दर लोदी(सन् 1488–1517 ई0) द्वारा किये गये अत्याचारों के वर्णन का उल्लेख अनन्तदास कृत 'कबीर परिचई' में भी हुआ है। उक्त आशय से यहाँ पर तात्पर्य यह है कि संत कबीर मुगल शासक सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। संत कबीर का दूसरा अन्तस्साक्ष्य है–उनके द्वारा जयदेव और नामदेव की महत्ता का वर्णन

"**गुर प्रसादी जैदेव नामां, भगति के प्रेमी इनही हैं जाना**।"

अगर इस पंक्ति को प्रामाणिक माना जाय तो स्पष्ट है कि कबीर का समय चौदहवीं शताब्दी के आस पास आरम्भ हुआ होगा। संत कबीर की जन्मतिथि का निर्दोष पूर्ण निर्णय अभी तक नही हो सका है। इस संबंध में अधिकांश विमर्श **कबीर पंथ** में प्रचलित निम्नलिखित छन्द पर आधृत है–

चौदह सै पचपन साल गये चंद्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी वरसायत को पूरनमासी तिथि प्रकट भए।।
घन गरजे दामिनी दमके बूंदे बरसे घर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु परकास भए।।

इस छन्द के रचयिता के संबंध में भी निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता। डॉ0 श्यामसुन्दर दास के अनुसार यह कबीर के शिष्य **धर्मदास** की रचना है [5], किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, इसके अलावा अनेक शोधार्थी–विद्वानों ने अपने हिसाब से संत कबीर के जन्म की अनुमानित तिथि तय की है [6], जैसेः नील के मतानुसार 1490 ई0, फर्कुहर के अनुसार 1400 ई0, हंटर की दृष्टि में 1300 ई0, मेकालिफ के अनुसार 1398 ई0 और वेस्टकाट, स्मिथ तथा भंडारकर के मत से 1440 ई0। अतः अन्तस्साक्ष्य, अनेक मतों

की स्वीकृति और 'कबीर चरित बोध' के प्रमाण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि संत कबीर का आविर्भाव 1398 ई0 में हुआ था।

मृत्यु–विचार / वृक्ष का अवसान

जन्म–काल के समान ही संत कबीर का मृत्यु–काल भी अनिश्चित और अनेक मत–मतान्तरों से युक्त रहा है। भक्तकाल के टीकाकार प्रियादास के अनुसार उनका देहावसान मगहर में 1492 ई0 में हुआ था। संत कबीर की मृत्यु तिथि के संबंध में भी कई तिथियों का उल्लेख मिलता है[7]–

संवत् पन्द्रह सौ पछत्तरा किया मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन।।

पन्द्रह सौ औ पांच में, मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुदी एकादशी, मिल्यौ पौन में पौन।।

पन्द्रह सै उन्चास में, मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुदी एकादशी, मिलो पौन में पौन।।

संवत् पंद्रासौ उनहत्तरा रहाई।
सतगुरु चले उठि हंसा गाई।।

उपर्युक्त तिथियों में पहली तिथि(संवत् 1575) को बहुसंख्यक विद्वानों की स्वीकृति प्राप्त हुई है, किन्तु इसकी प्रामाणिकता का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य हमें प्राप्त नहीं होता है। जनश्रुति यह भी है कि संवत् 1575 में संत कबीर मगहर गये और वहाँ उनकी मृत्यु हुई होगी। इस बात की स्वीकृति डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा [8] द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य कोष' द्वितीय भाग में भी मिलती है। वस्तुतः संवत् 1575 को कबीर की मृत्यु–तिथि को अधिकतर विद्वानों द्वारा मान्यता देने के बाद भी यह बात अपनी जगह स्थिर है कि इसका कोई ठोस, ऐतिहासिक आधार अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है।

जन्म और मृत्यु–स्थान

संत कबीर जी के जन्म स्थान को लेकर भी कई प्रवाद प्रचलित हैं, प्रमुख मत चार हैं–

मगहर, आजमगढ़ जिले के 'बेलहारा' ग्राम में, **मिथिला** में एवं **काशी** में।

इनमें से भी मगहर और काशी ही विद्वानों की बहस के मुख्य केन्द्र रहे हैं। मगहर जन्म–स्थान के संबंध में प्रायः उनकी एक पंक्ति को उद्धृत किया जाता है, जिसके अनुसार वह मगहर में पैदा हुए थे।[9] (पहिले दरसन मगहर पाइयों, पुनि कासी बसै आई) इससे निष्कर्ष निकालते हुए डॉ0 बड़थ्वाल ने लिखा है, ''इससे जान पड़ता है कि काशी में बसने से पहले वह केवल मगहर में रहते ही नहीं थे, अपितु वहीं उन्हें पहले–पहल परमात्मा का दर्शन भी प्राप्त हुआ था। अधिक संभव है कि कबीर का जन्म मगहर में ही हुआ हो, जो आज भी प्रधानतया जुलाहों की बस्ती है।''[10] 'कबीर ग्रंथावली'(संपादक डॉ0 पारसनाथ तिवारी, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय) तथा 'कबीर ग्रंथावली'(संपादक डॉ0 माताप्रसाद गुप्त) में यह पद नहीं है। यदि इसे प्रामाणिक मान भी लिया जाए तो इनसे इतना ही प्रकट होता है कि संत कबीर ने उस

परमात्मा के प्रकाश का अनुभव सबसे पहले मगहर में ही किया था। इस संदर्भ में डॉ0 रामकुमार वर्मा का तर्क है, ''मृत्यु के समय उनका मगहर लौट जाना मनुष्य की उस स्वाभाविक प्रेरणा का प्रतीक हो सकता है, जिससे वह अपनी जन्म–भूमि या उसके समीप ही आकर मरना चाहता है। अतः मेरे दृष्टिकोंण से संत कबीर का मगहर में जन्म मानना अधिक युक्तिसंगत है''। डॉ0 रामकुमार वर्मा के तर्क को स्वीकार करने में दो आपत्तियां हैं। एक तो यह कि, संत कबीर का मगहर में जन्म लेना उपर्युक्त पद से प्रमाणित नहीं होता और दूसरे यह कि मृत्यु के कुछ पूर्व कबीर का मगहर जाने का उल्लेख उनके कुछ पदों में हुआ है और उससे यही आभास होता है कि संत कबीर इस रूढ़ि और अंधविश्वास को तोड़ने के लिए, कि 'मगहर में मरने पर नर्क और काशी में मरने पर व्यक्ति स्वर्ग जाता है', ही मगहर गए थे।[11]

काशी का तर्क : संत कबीर का जन्म 'काशी' मानने के पक्ष में कुल तीन प्रकार के तर्क है–

1. संत कबीर ने अपनी वाणियों में अपने को काशी का जुलाहा कहा है।[12]

   तू बाम्हन मैं कासी का जोलाहा, चीन्हि न मोंर गियानां।
   तैं सब मागे भूपति राजा, मोरे राम धियानां।।

2. अनंतदास ने '**कबीर परिचयी**'(संवत् 1657) में संत कबीर को काशी का जुलाहा कहा है।[13]
   काशी बसे जुलाहा एक। हरि भगतिन की पकरी टेक।।

3. जनश्रुतियां संत कबीर को काशी में आविर्भूत मानती हैं। इन जनश्रुतियों के अनुसार संत कबीर, नीरू और नीमा नामक जुलाहा दंपत्ति को **काशी के लहरतारा** नामक स्थान से प्राप्त हुए थे। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी इस मत को स्वीकारा है, उनके अनुसार

   '' मैं समझता हूँ कि यह बात निश्चित सी है कि पुनीत काशीधाम, संत– कबीर साहब का जन्म स्थान, उनकी माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था।''[14]

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर रेवरेंड अहमद शाह ने भी संत कबीर का जन्म स्थान काशी ही माना है।[15]

वैसे अब प्रायः यह मान लिया गया है कि संत कबीर का जन्म स्थान वाराणसी जनपद का लहरतारा नामक स्थान है।[16] **कबीर मंसूर**(लेखक स्वामी परमानन्द दास), **कबीर कसौटी** (लेखक युगलानंद) आदि ग्रन्थों में 'लहरतारा' को ही संत कबीर की जन्मभूमि माना गया है।

जाति का विवाद

संत कबीर किस सम्प्रदाय में पैदा हुए थे, इसका उल्लेख उन्होंने कहीं नहीं किया है। उन्होंने अपने काव्य में कहीं भी न हिन्दू कहा है और न मुसलमान, हाँ उन्होंने अपने को **जुलाहा** अनेक जगहों पर कहा है। अन्तस्साक्ष्य तथा वहिस्साक्ष्य दोनों से उनका जुलाहा होना प्रमाणित है।

'तू बाम्हन मैं कासी का जोलाहा'[17]
'तननां बुननां तज्यों कबीर। राम नाम लिखि लियौ सरीर'[18]
'गई बुनावन भादो, घर छोड़ियै जाइ जुलाहो'[19]

संत कबीर को जुलाहा समझे जाने की बात संतों के बीच बहुत पहले से मान्य है। इस सन्दर्भ में कुछ लोग संत कबीर के 'हिन्दू संस्कारों की प्रबलता' के संबंध में प्रश्न उठाते हैं। यदि संत कबीर जुलाहे थे तो उनकी वाणियों में योग मत एवं हिन्दू विश्वासों का समावेश कैसे हुआ इसके दो समाधान आलोचकों ने सुझाए हैं– एक तो यह कि संत कबीर पर रामानंदी वैष्णवों की गहरी छाप पड़ी और उन्होंने उन्हीं से इन संस्कारों को ग्रहण किया। दूसरा समाधान पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। द्विवेदी जी के अनुसार ''कबीरदास जिस जुलाहा जाति में पालित हुए थे, वह एकाध पुस्त पहले के योगी जैसी किसी आश्रम भ्रष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या अभी होने की राह पर थी।''[20], यह अनुमान अधिक सही लगता है। अतः संत कबीर का आश्रम–भ्रष्ट योगी जाति का जुलाहा होना स्वीकार्य हो सकता है।

पारिवारिक जीवन

माता–पिता

जनश्रुति के अनुसार संत कबीरदास स्वामी रामानंद के आशिर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि संत कबीरदास का संबंध हिन्दू धर्म से जोड़ने के लिए इस जनश्रुति की उद्‌भावना की गई होगी। जो भी हो इस प्रसंग को काल्पनिक या प्रक्षिप्त स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि इस जनश्रुति में भी उनका नीरू और नीमा जुलाहा दम्पत्ति द्वारा पालित होना बताया गया है।[21]

गृहस्थ जीवन

संतों ने यद्यपि कनक–कामिनी की निन्दा की है, पारिवारिक संबंधों को क्षणिक और बन्धन का कारण बताया है तथापि यह भी निर्विवाद रूप से प्रमाणित है कि अधिकांश संत गृहस्थ थे और विवाहित थे। संतों की मान्यता थी कि केवल घर का त्याग कर देने से, वस्त्र रँगा लेने से अथवा विचित्र वेष–भूषा से ही परमार्थ लाभ नहीं हो सकता। संत कबीर भी ऐसे संत थे जो गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए परम–तत्त्व की आराधना में लगे हुए थे। उनकी **लोई** नामक पत्नी का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है।[22] उनके एक पद से यह भी ध्वनित होता है कि उनके दो विवाह हुए थे।[23] पहली पत्नी कुरूपा और कुलक्षणी, दूसरी सुन्दर और सुशील थी। एक अन्य पद के आधार पर यह भी बताया जाता है कि उनकी दूसरी पत्नी का वास्तविक नाम **धनिया** था, जो बाद में बदलकर **रमजनिया** कर दिया गया था।[24] संत कबीर अपनी पहली पत्नी से असंतुष्ट रहा करते थे, क्योंकि वह कबीरदास जी की भक्ति भावना का सदैव विरोध करती थी। एक साखी में उसी पत्नी की ओर संकेत करते हुए वह कहते हैं जैसे तीन दिन का बासी दूध फट कर मदार के दूध की तरह विषैला हो जाता है, वैसे ही पत्नी के कटु वाक्यों से मेरा मन संसार से विरक्त हो गया और उसके प्रति अनुराग और विश्वास जाता रहा।[25] अपनी इसी विरक्ति का संकेत उन्होंने एक अन्य साखी में भी किया है।[26] संत कबीर के दो पुत्र और पुत्रियों का भी उल्लेख मिलता है। संत कबीर के पुत्र **कमाल** का उल्लेख तो कई जगह मिलता है। इससे यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित है कि कबीरदास जी विवाहित थे।

गुरु

स्वामी रामानंद

परम्परा से स्वामी रामानंद को संत कबीर का गुरु माना जाता रहा है, किन्तु कबीरदास जी की प्रामाणिक समझी जाने वाली किसी रचना में स्वामी रामानंद का नाम नहीं आया है। डॉ0 शुकदेव सिंह संपादित कबीर बीजक के शब्द 77 में अवश्य स्वामी रामानंद का उल्लेख है –

रामानंद नाम रस माते । कहै कबीर हम कहि कहि थावै ।।[27]

डॉ0 शुकदेव सिंह का दावा है कि **कबीर सिद्धांत** की प्रामाणिकता और दार्शनिकता की सही जानकारी के लिए बीजक ही एकमात्र आधार ग्रन्थ है।[28] डॉ0 शुकदेव सिंह के दावे को स्वीकार कर लेने के बाद भी बीजक के **सबद** से इतना ही ज्ञात होता है कि राम रस में निरंतर मग्न रहने वाले रामानंद भी अंततः इस संसार में नहीं रहे। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि रामानंद कबीरदास के गुरु थे। स्वामी रामानंद को संत कबीरदास का गुरु कहने वाले पहले व्यक्ति भक्त कवि व्यास जी हैं। इसके बाद **नाभादास के भक्तमाल**[29] तथा **अनन्तदास** द्वारा रचित **कबीर साहब जी की परिचयी**[30] (संवत् 1657 ई0) में स्वामी रामानंद को संत कबीरदास का गुरु घोषित किया गया है। संत कबीर का जो समय परम्परा से मान्य है उसके अनुसार स्वामी रामानंद की वृद्धावस्था में संत कबीर का उनके सम्पर्क में आना स्वीकार्य हो सकता है। अतः संत कबीर के स्वामी रामानंद के शिष्य होने से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

शेख तकी

हिन्दू परम्परा के अनुसार शेख तकी संत कबीर के विरोधी और प्रतिस्पर्धी थे, किन्तु मुसलमानी परम्परा उन्हें संत कबीर का पीर(गुरु) मानती है।[31] जहाँ तक अन्तस्साक्ष्य का प्रश्न है, मात्र बीजक की दो **रमैनियों** (रमैनी 48 और 63) में ही शेख तकी का उल्लेख मिलता है। रमैनी 48 में कहा गया है–

मानिक पुरहि कबीर बसेरी। मद्दति सुनी सेख तकी केरी।।
ऊ जे सुनी जौनपुर धामा। झूँसी सुनि पीरन को नामा।।[32]

रमैनी 63 के अंत की साखी में कहा गया है–

नाना नाच नचाय के, नाचै नट के शेख।
घट–घट अविनासी बखै, सुनहु तकी तुम सेख।।[33]

रमैनी 48 से प्रकट होता है कि संत कबीरदास मानिकपुर, शेख तकी की प्रशंसा सुनकर गये थे। परन्तु रमैनी 63 से ज्ञात होता है कि वे शेख तकी को उपदेश दे रहे हैं। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि संत कबीर ने किसी शेख तकी से सत्संग किया था, किन्तु शेख तकी उनके पीर या गुरु नहीं थे। अधिकांश लेखकों की यह मान्यता है कि शेख तकी से द्वेष के ही कारण सिकन्दर लोदी ने संत कबीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी थी। जहाँ तक रामानंद का प्रश्न है उन्होंने संत कबीर को विधिवत् भले ही दीक्षित न किया हो, किन्तु उनका प्रभाव संत कबीर पर अवश्य था। संत कबीर ने गुरु का श्रद्धापूर्वक अनेक बार स्मरण किया है।

2 संत कबीरदास के दार्शनिक सिद्धांत

संत कबीरदास को दार्शनिक कहना या उनके मतों में दार्शनिक सिद्धांत निर्मित करना बड़ा ही जोखिम और जटिल कार्य है। संत कबीरदास मूलतः भक्त थे। '**सत्**' के स्वरूप का उन्होंने जो रहस्योद्घाटन और विश्लेषण किया है, वह अपने आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभूत सत्य के आधार पर ही केन्द्रित है। इसके विपरीत दार्शनिक होने के लिए संत या भक्त होना कोई अनिवार्य नहीं है। दार्शनिक किसी भी वस्तु के तात्विक स्वरूप का निर्णय बुद्धि से करता है। उसके विचारों में तर्क और बुद्धि के द्वारा सन्तुलन बना रहता है। दार्शनिक के रूप में संत कबीर के मूल्यांकन में दूसरी समस्या यह आती है कि उनमें किसी एक मत, धर्म का आग्रह नही है बल्कि कई मतों, धर्मों का सन्तुलन है। भक्त के रूप में उन्होंने जहाँ वर्ण्य–वस्तु का चुनाव किया है, अर्थात् उसकी आत्मा भक्त के अनुकूल है, वहीं अभिव्यक्ति दार्षनिक के समान बुद्धि, तर्क और विष्लेषण से युक्त उनके तर्क ऐसे अकाट्य होते हैं कि बड़े से बड़ा पण्डित भी

निरुत्तर हो जाता है। संभवतः उनके इसी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संत कबीर को '**ज्ञानमार्गी**' कहना स्वीकार किया था। इस दृष्टि से देखना चाहें तो संत कबीर का एक व्यक्तित्व दार्शनिक का हो सकता है।

संत कबीरदास जी का दार्शनिक विचार अनेक दर्शनों का समन्वय है, और उसके बारे में निर्णयात्मक रूप से कुछ कहना आसान नहीं है। इसी बात का संकेत करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा था, '' ..... जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानंदजी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किये। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिये। इसी से उनके तथा निर्गुणवाद वाले और दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, कहीं योगियों के नाड़ीचक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी।'' [34] वस्तुतः इस मुद्दे पर आलोचकों में मतैक्य नहीं है और प्रदत्त तथ्य अपर्याप्त हैं।

अकबर कालीन प्रसिद्ध इतिहासकार मोहसिन फानी ने अपने प्रसिद्ध इतिहास–ग्रन्थ '**दबिस्तान**' में कबीर को '**मुबाहिद**'(एकेश्वरवादी) कहा है।[35] उनके लिए इसी शब्द का प्रयोग '**आइने–ए–अकबरी**' में भी किया गया है, रेवरेंड जी0 एच0 वेस्टकॉट ने इस शब्द पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि कोई मुसलमान कभी भी किसी मूर्तिपूजक को 'मुबाहिद' नहीं कह सकता। इससे यह प्रमाणित होता है कि कबीर **ईश्वरवादी** थे, **सर्वेश्वरवादी** नहीं।[36] बाबू श्याम सुन्दर दास ने संत कबीरदास को **ब्रह्मवादी** या **अद्वैतवादी** माना है। उनका कथन है– '' यह शंकर का अद्वैत है, जिसमें आत्मा और परमात्मा परमार्थतः एक माने जाते हैं, परन्तु बीच में अज्ञान के आ जाने से आत्मा अपनी पारमार्थिकता को भूल जाती है। यही बात हम संत कबीर में भी देख चुके हैं।[37] डॉ0 पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत कबीर को अद्वैत विचारधारा मानने वाले संतों में प्रमुख स्थान प्रदान किया है।[38] डा0 रामकुमार वर्मा के अनुसार– ''अद्वैतवाद और सूफीमत में ईश्वर की जो भावना है, वही उन्होंने अपने दर्शन में रखी है। उनका ईश्वर सर्वोपरि है, वह नासूत होकर भी लाहूत है– संसार के कण–कण में विद्यमान होते हुए भी संसार से परे है।''[39]

इन सबसे हटकर पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक नवीन स्थापना करते हुए संत कबीर के **निर्गुनराम** को नाथपंथी योगियों के **द्वैताद्वैत विलक्षण**, **भावाभाव–विनिर्मुक्त**, **अलख**, **अगोचर**, **अगम्य**, **प्रेमपारावार** भगवान को संत कबीरदास ने निर्गुण राम कहकर सम्बोधित किया है।[40] रेवरेंड अहमद शाह ने **बीजक** के आधार पर संत कबीर के उपदेशों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि संत कबीर के उपदेश न तो वेदान्त पर आधृत हैं न सांख्य पर, न वे न्याय के अनुगामी हैं, न मीमांसा के, उनके विचार उनके मौलिक चिन्तन पर आधृत हैं।[41] वस्तुतः शाह साहब, संत कबीर के सिद्धांतों से किसी विचार से पूर्णतः साम्य न बैठा सके, क्योंकि संत कबीर ने इन विचारों की कोरी नकल नहीं की थी बल्कि उन्होंने कई तत्त्वों को मिलाकर एक नवीन जीवन दर्शन का रसायन तैयार किया था, जो पूर्णतः मौलिक था। इसी से मिलता–जुलता विचार श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय '**हरिऔध**' का भी है। उन्होंने संत कबीर को वैष्णव भक्ति से प्रभावित मानते हुए 'स्वाधीन चिन्ता का पुरुष' कहा है।[42] ठीक इसी तरह का विचार व्यक्त करते हुए श्री परशुराम चतुर्वेदी ने संत कबीर की पंक्तियों को उद्धृत करके यह प्रमाणित करना चाहा है कि संत कबीर के मत में जो तत्व प्रकाशित हुआ था, वह उनके स्वाधीन चिन्तन का ही परिणाम था।[43] इस तत्व के स्वरूप के सम्बंध में आप कहते हैं– ''वह परमतत्व निर्गुण एवं सगुण इन दोनों से परे की वस्तु है और वह अनुभव में आने पर भी अनिर्वचनीय है।''[44] वस्तुतः हरिऔध जी और परशुराम चतुर्वेदी जी ने संत कबीर के सिद्धांतों में एक नवीन तत्व देखा था, जो युग विशेष की परिस्थितियों की चिन्ता से उपजा था।

उपर्युक्त विचारकों के विश्लेषणों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक विचारक ने अपने– अपने ढँग से संत कबीर के दार्शनिक सिद्धांतों को स्थिर करना चाहा है। जैसे मोहसिन फानी के विचारों के केन्द्र में इस्लाम की धर्मभावना है, बाबू श्यामसुन्दर दास के मत के पीछे शंकराचार्य का अद्वैतवाद व संत कबीर का दर्शन एक ही धारा की अगली कड़ी मानने का पूर्वाग्रह रहा। डॉ0 बड़थ्वाल का पूर्वाग्रह यह था कि उन्होंने पूरी निर्गुण संत–परम्परा में व्याप्त विचारों को वेदान्त के पुराने मतों के अन्तर्गत व्यवस्थित करना चाहा है। वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथपंथी योगियों के सिद्धांतों को पृष्ठभूमि में रखकर संत कबीर के दार्शनिक सिद्धांत निश्चित कर रहे थे।

विभिन्न विचारकों और अध्येताओं की नजर से संत कबीरदास जी के दार्शनिक सिद्धांतों को परखने के बाद यह देखना ज्यादा उचित होगा कि संत कबीर ने विभिन्न दार्शनिक तत्वों पर किस तरह के विचार व्यक्त किए हैं।

संत कबीरदास जी के निर्गुणराम

संत कबीरदास जी ने जिस परमतत्त्व (ईश्वर) को **निर्गुणराम** कहा है वह अज्ञेय है। उसकी गति लक्षित नहीं की जा सकती। चारों वेद, स्मृतियाँ, पुराण, व्याकरण आदि कोई भी उसका मर्म नहीं जानते।[45] वह निरंजन (माया) रहित है। न वह जन्म लेता है, न विनष्ट होता है।[46] न उसकी कोई रूपरेखा, न उसका कोई वर्ण है।[47] उस निर्भय, निराकार, अलख–निरंजन को कोई ठीक से नहीं जानता। वह '**वर्ण–अवर्ण**' से मुक्त, 'आदि मध्य, अंत रहित', 'सृष्टि और लय से परे', एवं अकथ्य है।[48] संत कबीरदास इस 'नेति–नेति' शैली को बहुत दूर तक ले गए हैं। वह बार–बार उस परमतत्व ईश्वर को सभी प्रकार के स्थूल तत्वों से अलग करना चाहते हैं। वे इसी भावावेश में कहते हैं कि राम–नाम की चर्चा तो बहुत हुई है पर उसका मर्म कोई नहीं जानता। वस्तुतः वह वेदों की सीमा से परे हैं। सभी प्रकार के भेदों से अलग है। वह पाप और पुण्य, ज्ञान और ध्यान, स्थूल और शून्य सभी से परे है।[49] यहाँ हम स्पष्ट देख रहे हैं कि **भाषा संत कबीर के सामने लाचार** नहीं है बल्कि **भाषा संत कबीर का साथ नहीं दे रही है**। सामान्यजन(पण्डितजन की ओर भी इशारा है) जिस भाषा से परिचित हैं वह भेदमूलक है क्योंकि इस भाषा में रूप है, अरूप है; वर्ण है, अवर्ण है; लोक है, वेद है; निर्गुण है, सगुण है; जन्म है, मरण है; आदि है, अंत है; पाप है, पुण्य है; परमतत्त्व इन सभी विषमताबोधक स्थितियों से परे है। इसीलिए संत कबीर बार–बार कहते हैं वह जैसा है उसे ठीक वैसा ही समझना और समझाना दोनो ही असम्भव है। पहली कठिनाई तो स्वरूप के वास्तविक बोध की है, क्योंकि–

जस तूं तस तोहि कोइ न जान।
लोग कहैं सब आनहिं आन।।[50]

दूसरी कठिनाई भाषा और अभिव्यक्ति की है क्योंकि –

जस कथिये तस होत नाहीं, जस है तैसा सोई।[51]

उसे व्यक्त करने के लिए हम जितना ही बोलते हैं, उतना ही तत्त्व से दूर होते जाते हैं–

बोलना का कहिये रे भाई।
बोलत बोलत तत्व नसाई।।[52]

यह जानते हुए भी कि बोलने से विकार बढ़ता है, बोलते इसलिए हैं कि बिना बोले विचार हो ही नहीं सकता–

बोलत बोलत बढ़ै बिकार।
बिन बोल्याँ क्यूँ होइ बिचार।।[53]

संत कबीरदास जी का यह निर्गुणराम(परमतत्व) सर्व–निरपेक्ष होते हुए भी **एक** है। वे बार–बार कहते हैं कि मैंने तो उस एक तत्व को **एक ही** करके समझा है।[54] वे बलपूर्वक कहते हैं कि हिन्दुओं और तुर्कों का कर्त्ता एक ही है। **राम** और **रहीम**, **केशव** और **करीम विसमिल** और **विश्वंभर** में भेद नहीं करना चाहिए।[55] अपना मत स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि मेरा सारा भ्रम दूर हो गया है और मेरा मन एक निरंजन में लग गया है। मेरा अल्लाह एक और निरंजन है। वह सबमें और सब उसमें विद्यमान है। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। जो परमात्मा सारी सृष्टि में समाया हुआ है, जो अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, वही हमारे हृदय में भी विद्यमान है। उसे प्राप्त करने के लिए इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं। इसीलिए संत कबीर मन को समझाते हुए कहते हैं कि रे मन ! कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है, वह अविनाशी तो हृदय–सरोवर में ही विद्यमान है।[56] उसे दुनिया में ढूँढ़ना तो भ्रम में पड़ना है। हरि तो हृदय में ही है।[57]

परमतत्त्व को बार–बार **निर्गुण**, **निरंजन**, **निराकार** कहते हुए भी संत कबीर उसमें उन गुणों की स्थिति मानते हैं जो सामान्यतः सभी भक्त अपने आराध्य में स्वीकार करते हैं। संत कबीरदास जी यह भी स्वीकार करते हैं कि आकार–रहित और अव्यक्त होते हुए भी परमात्मा संसार की सारी संवेदनाएँ ग्रहण करने में समर्थ है।

परमतत्त्व ईश्वर(निर्गुण ब्रह्म) के संबंध में उपर्युक्त मान्यताएँ उनके निजी चिन्तन और अनुभूति का परिणाम भी हैं और उनके युग व पूर्व–परम्परा की आध्यात्मिक चेतना से प्रेरित भी।

जीव–तत्व

शंकराचार्य के वेदान्त दर्शन के अनुसार ''शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्मफल के भोक्ता आत्मा को ही जीव कहते हैं।''[58] दूसरे शब्दों में कहा गया है कि ''पर ब्रह्म ही उपाधि सम्पर्क से जीव भाव में विद्यमान रहता है।'[59] अर्थात् परब्रह्म, आत्मा और जीव में तात्विक भेद नहीं है। आत्मा और ब्रह्म तो एक ही है। जब आत्मा उपाधि–सम्पर्क के कारण अन्तःकरणावच्छिन्न होकर कर्म–फल का भोक्ता हो जाता है तो वह **जीव** कहलाता है और जब वह उपाधि–सम्पर्क–रहित शुद्ध चैतन्य की स्थिति में होता है तब वह **ब्रह्म** कहलाता है। संत कबीरदास जी के जीव तत्व सम्बंधी विचार उपर्युक्त विचार से काफी मिलते–जुलते हैं। वे कहते हैं कि रात्रि के समय स्वप्नावस्था में **पारस**(पारस रूप शुद्ध चैतन्य=ब्रह्म) और **जीव** में भेद रहता है। जब तक मैं सोता रहता हूँ तब तक द्वैतभाव बना रहता है, जब जागता हूँ तो अभेद हो जाता है।[60] रात्रि अज्ञान–दशा का सूचक है और जागरण ज्ञान–दशा का। ज्ञान–दशा में जीव और ब्रह्म की पूर्ण एकता संत कबीर को मान्य है। संत कबीरदास ने जीव के शुद्ध चेतन रूप की ओर संकेत करते हुए एक स्थान पर उसे राम का अंश भी कहा है।[61] जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता स्वीकार करते हुए भी संत कबीरदास यह मानते हैं कि जीव अपने शुद्ध चेतन रूप को भूलकर विषयों में अनुरक्त है। ऐसे जीव को वे **हद का जीव** कहते हैं। ऐसे जीव से वे मुख भर बोलना भी नहीं चाहते, किन्तु जो **बेहद के जीव** हैं जो असीम तत्व में अनुरक्त हैं, उनसे वे अपने हृदय की बात प्रकट करने में संकोच नहीं करते।[62]

माया

अद्वैत वेदान्त की एक अद्भुत माया है। यह न **सत् है** न **असत्**। **सत्** इसलिए नहीं है कि ब्रह्म का ज्ञान होने पर इसका ज्ञान बाधित हो जाता है किन्तु यह **असत्** भी नहीं है क्योंकि **असत्** वस्तु की प्रतीति नहीं होती जबकि माया की प्रतीति होती है। शंकराचार्य के अनुसार **माया** भगवान की अव्यक्त शक्ति है, जिसके आदि का पता नहीं चलता। यह गुण त्रय (सत, रज, तम) से युक्त अविधा रूपिणी है।[63] संत

कबीरदास ने **माया** के सम्बंध में विचार करते हुए उपर्युक्त विचारों के निकट का ही मत दिया है। संत कबीरदास जी के माया संबंधी विचारों का सम्यक् परीक्षण करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें माया के स्वरूप का पूरा ज्ञान था। वे अच्छी तरह जानते हैं कि माया त्रिगुणात्मिका है।[64] वे यह भी जानते हैं कि माया भगवान की ही शक्ति है जो सारे संसार के जीवों को अपना बनाने के लिए निकल पड़ी है।[65] वे संतों को समझाते हुए कहते हैं कि यह सब आवागमन का चक्र माया ही है अर्थात् जो कुछ उत्पन्न और विनष्ट होता है, वह सब माया से प्रभावित है।[65] एक जगह संत कबीर ने संसार के प्रति आसक्ति उत्पन्न करने वाले सारे बन्धनों को **माया** बताया है। वह कहते हैं कि **आदर**, **मान**, सांसारिक विषयों के प्रति होने वाली आसक्ति, **जप**, **तप**, **योग**, **माता**, **पिता**, **स्त्री**, **पुत्र** यह सब कुछ माया ही है। यह माया जल, थल, आकाश और हमारे आस–पास चारों ओर व्याप्त है। सभी लोग माया के बंधन में पड़े हैं। माया के कारण ही लोग अपने प्राण दे देते हैं। ऐसी माया को त्यागने का बार–बार प्रयत्न करता हूँ किन्तु यह छोड़ी नहीं जाती। जहाँ ब्रह्म ज्ञान है वहाँ माया का स्थान नहीं है।[66] संत कबीर ने अनेक जगह माया की भर्त्सना की है। उसकी उपमा कहीं वह वेश्या से देते हैं, कहीं उसे **पापणी**, **मोहणी**, **दारुणी** और **विश्वासघातिनी** कहा है। उसे रामभक्ति में सबसे बड़ी बाधा भी माना है लेकिन महात्मा कबीर को यह भी विश्वास है कि जब परमात्मा का स्मरण करने वाले संत इसे भोगकर इसकी उपेक्षा कर देते हैं तब यह उनकी दासी बन जाती है।[67]

संसार : सृष्टि

संसार की सृष्टि के संबंध में संत कबीरदास के विचारों पर सांख्य, अद्वैतवेदान्त तथा शैव, तंत्र एवं योग दर्शनों का संस्कारगत प्रभाव लक्षित होता है। कहीं–कहीं उन्होंने इस सन्दर्भ में अल्लाह द्वारा एक नूर से सारे संसार की सृष्टि होने की बात कहकर इस्लाम की मान्यताओं से परिचित होने का संकेत भी दिया है।[68] इस सम्बंध में संत कबीरदास पर सांख्य का प्रभाव भी लक्षित किया गया है। इसी प्रभाव की चर्चा करते हुए डॉ0 बड़थ्वाल ने कहा है, ''अतएव शंकराचार्य के अनुयायियों की भांति कबीर आदि निर्गुणियों ने भी सांख्य सिद्धान्त का उपयोग किया, परन्तु उस पर अद्वैत की छाप लगा कर प्रकृति और पुरुष को भी उन्होंने व्यावहारिक सत्य के रूप में ग्रहण किया और उनके संयुक्त रूप को ब्रह्म का व्यावहारिक व्यक्त स्वरूप माना जिसके परे अव्यक्त पूर्ण ब्रह्म का स्थान था।''[69] यहाँ यह देखना दिलचस्प है कि सांख्य दर्शन में उल्लिखित तत्त्वों(तीन गुणों और पाँच तत्त्वों) से संसार के रचे जाने की बात कहकर भी संत कबीर ब्रह्माण्ड और पिण्ड को नश्वर मानते हैं, जबकि इसके विपरीत सांख्य इनका नाश नहीं मानता। संत कबीर ने कहा है कि ब्रह्माण्ड भी नहीं है, पिण्ड भी नहीं है और पंचतत्त्व भी नहीं है।[70] यह तन, यह मन और सत, रज, तम ये तीनों गुण भी मिथ्या हैं।[71] यहाँ हम यह साफ देख सकते हैं कि सांख्य दर्शन की शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी संत कबीर ने सृष्टि के सम्बंध में सांख्य का विचार स्वीकार नहीं किया है। इसी तरह तत्कालीन समय में प्रचलित शक्ति, तन्त्र और योग– इन तीनों शब्दों में स्वीकृत **नाद** और **बिन्दु** की चर्चा भी संत कबीर ने की है। इन्हीं मतों से प्रभावित होकर एक जगह उन्होंने कहा है कि **नाद** और **बिन्दु** से रचित यह शरीर नौका रूप है और राम का नाम ही इसे भवसागर से तारने के लिए कर्णधार है।[72] एक जगह उन्होंने यह भी लिखा है कि मेरा **खसम** वही है, जो **नाद–बिन्दु** से परे हैं।[73] तंत्र सम्प्रदाय के ग्रन्थों में **नाद** और **बिन्दु** पर विस्तारपूर्वक चर्चा है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि **ब्रह्माण्ड** और **पिण्ड** दोनों शिव–शक्ति तत्व के ही व्यक्त रूप हैं। मानव पिण्ड में शक्ति कुण्डलिनी रूप में सुप्त रहती है। ब्रह्माण्ड में इसे महाकुण्डलिनी के रूप में सुप्त माना जाता है। योगी जब साधना करता है तो उसकी कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वमुखी होकर शिव तत्व से मिलने के लिए आगे बढ़ती है। कुण्डलिनी के उद्बुद्ध होकर शिवोन्मुख होने से जो स्फोट होता है, उसे **नाद** कहते है।[74] तंत्रषास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ शारदा तिलक में वर्णित है कि प्रकृति सम्पृक्त सच्चिदानन्दरूप परमेश्वर से शक्ति उत्पन्न हुई। **शक्ति** से **नाद** और **नाद** से **बिन्दु** उत्पन्न हुआ। यह **बिन्दु** तत्त्व अपनी इच्छा से तीन रूपों– बिन्दु, नाद और बीज– में विभक्त हो गया। बिन्दु शिवात्मक है, बीज शक्तिरूप है और **नाद** इन दोनों के समवाय सम्बंध से उत्पन्न है।[75] सर जान वुकराफ ने **षट्चक्र**

निरूपण ग्रन्थ पर श्री राघव भट्ट की टीका का हवाला देते हुए बताया है कि **नाद** में सत्, रज और तम, प्रकृति के ये तीनों गुण विद्यमान होते हैं। इनमें से कभी किसी एक की और कभी किसी दूसरे की प्रधानता होती है। जब तमोगुण विद्यमान होता है तो नाद अव्यक्त रहता है(ध्वन्यात्मकोऽव्यक्त नादः) इस अव्यक्तावस्था में इसे **निबोधिका** या **बोधिनी** कहते हैं। जब रजोगुण प्रधान होता है, तब इसे **नाद** कहते हैं। इस अवस्था में किंचित् वर्णवोधन्यासात्मक ध्वनि होती है। जब सत्वगुण का प्राधान्य होता है, तब नाद बिन्दु रूप हो जाता है।[76] सम्पूर्ण वक्तव्यों का निस्कर्ष निकालने पर यही प्रतीत होता है कि संत कबीर **नाद** और **बिन्दु** को परम चैतन्य की स्थूल अभिव्यक्ति मानते हैं और इनसे होने वाली रचना को भी नश्वर या नाशवान ही समझते हैं। संसार सृष्टि के संबंध में कहीं संत कबीर पर सांख्य, कहीं शषाक्त, कहीं तंत्र और कहीं प्रणवतत्व का प्रभाव आलोंचकों ने लक्षित किया है[77] लेकिन इन दर्शनों का प्रभाव ही संत कबीर ने ग्रहण किया है, अनुकरण नहीं किया है, यह कबीर के स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व के अनुकूल ही है।

संसार की असारता

संसार पर संत कबीर का विचार उपरले तौर पर देखने पर निषेधात्मक प्रतीत होता है , लेकिन गहराई से विचार करने पर उनके निषेध का सच समझ में आता है क्योंकि संत कबीर का निषेध ही उनके सामाजिक चेतना और जागरुकता का प्रमाण है। संसार की असारता दिखाकर संत कबीर ने लोगों से इस संसार के प्रति मोह के त्यागने की बात बार–बार कही है। जगत के मिथ्यात्व या असारता पर कबीरदास जी ने बहुत बल दिया है। इसकी उपमा उन्होंने **सेमर के फूल**[78], **धुँआ के धरौहर**[79] से दी हैं। कभी इसे **कुहरा का धुन्ध**[80] और कभी **कागज की पुड़िया**[81] कहा है। संत कबीर कभी इसे स्वप्नवत् कहते हैं [82] और कभी एक हाट कहा है जहाँ सब लोग वाणिज्य करने आये हैं।[83] प्रत्येक स्थिति में संत कबीर संसार की नश्वरता, निस्सारता और दुःखमयता दिखाते हैं। वस्तुतः संत कबीर की जीवन दृष्टि निवृत्तिमूलक है, लेकिन यह निवृत्तिमूलकता केवल सामान्यजन और पण्डितों को सचेत करने के लिए ही है और इसके माध्यम से संत कबीर एकमात्र परमतत्त्व ब्रह्म की सत्यता प्रमाणित करना चाहते हैं।

मोक्ष

भारतीय दर्शन में चार पुरूषार्थों में **मोक्ष** को सबसे अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है। भारतीय दर्शन में इसे जीवन का चरम स्वीकार किया गया है। **मोक्ष** का अर्थ है जीवन मरण के चक्र से छुटकारा। आसक्ति और कर्म से निवृत्ति। कर्म में प्रवृत्ति न होने से उसका फल भोगने का प्रश्न ही नहीं उठता है। अतः जन्म–मरण का क्रम समाप्त हो जाता है और परम तत्त्व से मिलकर एकाकार हो जाता है। संत कबीर और अन्य संतों ने संसार को भवसागर माना है और इससे मुक्त होने को **तरना**(पार हो जाना) कहा है। सामान्य धारणा यह है कि संसार से छुटकारा पाकर जीव वैकुण्ठलोक में पहुँच जाता है। संत कबीरदास किसी वैकुण्ठलोक में विश्वास नहीं करते। वह कहते हैं कि हे भगवान! हमको तार कर कहाँ ले जाओगे? वह वैकुण्ठ कहाँ और कैसा है? मुक्ति का प्रश्न तो तब उठता है जब आपने हमको अपने से दूर कर दिया हो। तारने और तरने का प्रश्न तभी तक है जब तक तत्त्वज्ञान नहीं होता। संत कबीर ने सभी मे एक राम की सत्ता लक्षित कर ली है। अब उसे पूर्ण मानसिक शान्ति प्राप्त है।[84] स्पष्ट है कि संत कबीर की दृष्टि में राम से **एक भेंट** होना ही मुक्ति है। इसके लिए ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं नित्यता का ज्ञान आवश्यक है। शरीर रहते हुए जो माया के सारे बन्धनों को काट लेता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, विषयासक्त नहीं होता, उसे जीवन्मुक्त कहा जा सकता है। संत कबीर के अनुसार जगत् की समस्त आशाओं को त्याग देना ही **जीवन्मृतक**(जीवन्मुक्त) होना है।[85] एक अन्य जगह पर संत कबीर ने कहा है कि मेरा मन सांसारिक विषयों से विमुख होकर अपनी सनातन स्थिति(शुद्ध, निर्विकार, निर्द्वन्द्व स्थिति) में पहुँच गया है और अब मैं **जीवन्मृतक**(जीवन्मुक्त) स्थिति का अनुभव कर रहा हूँ।[86] मोक्ष सम्बंधी संत कबीर के वक्तव्यों को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके विचार भारतीय दर्शन में स्वीकृत धारणाओं के अनुकूल ही है।

निष्कर्ष

सम्पूर्णतः संत कबीरदास जी के दार्शनिक विचारों का अध्ययन कर हम पाते हैं कि कबीरदास जी के दार्शनिक विचार मात्र पलायन या बौद्धिक प्रयास नहीं है बल्कि उनकी सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं। कबीरदास जी के दार्शनिक विचार मात्र सिद्धान्त नहीं है बल्कि व्यवहार को ढालने का उपक्रम है क्योंकि उन्होंने सिद्धान्त और व्यवहार को एक करके दिखाया है। कबीरदास जी के दार्शनिक विचार बुद्धिप्रसूत न होकर अनुभूति और सत्संगति की आंच में पके हुए हैं और यही कारण है कि उन्होंने अपने पूर्व और समय में प्रचलित किसी भी मतों और सिद्धांतों का अनुकरण नहीं किया है बल्कि उसका युगानुरूप संशोधन कर उसे तेज धार दी है जिससे वह समाज के जड़तापूर्ण अनर्गल प्रलापों की जड़ काट सके। संत कबीर के दार्शनिक विचारों का गन्तव्य या लक्ष्य समाज–सुधार या समाज परिवर्तन ही है, इस दृष्टि से वह साधन है साध्य नहीं । साध्य तो मात्र समाज–परिवर्तन ही है। हिन्दू पुराण और धार्मिक साहित्य में जैसे कृष्ण का व्यक्तित्व और उनका दर्शन है उसी प्रकार संत कबीर का। जैसे कृष्ण का दर्शन बुराइयों के समानान्तर श्रेष्ठ व्यवस्था स्थापित करना था, उसी प्रकार कबीर का भी। इस बिन्दु पर दोनों महानायक एक हैं, और उनके दार्शनिक विचार अनुकरणीय भी।

संदर्भ

1 *तिवारी, रामचन्द्र 'कबीर मीमांसा', लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 1996, पृ0 45।*

2 *वही, पृ0 21।*

3 *वही, पृ0 22।*

4 *बाली, तारकनाथ(संपा0) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–1985, पृ0 143 ।*

5 *दास, श्यामसुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', भूमिका, सन् 1928, पृ0 8।*

6 *नगेन्द्र 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ0 143।*

7 *तिवारी, रामचन्द्र 'कबीर मीमांसा', पृ0 23।*

8 *वर्मा, धीरेन्द्र(संपा0) 'हिन्दी साहित्य कोष', द्वितीय संस्करण–1986, पृ0 66।*

9 *'गुरु ग्रन्थ साहब', पद–3।*

10 *बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' अवध पब्लिशिंग हाउस, पानदरीबा, लखनऊ, प्रथम संस्करण सन् 1951 ई0, पृ0 45।*

11 *वर्मा, रामकुमार 'संत कबीर', पृ0 76।*

12 *तिवारी, पारसनाथ(संपा0) 'कबीर ग्रन्थावली', पद 188, पृ0 109।*

13 *अनंतदास 'कबीर परिचयी', पृ0 25।*

14 *उपाध्याय, अयोध्या सिंह (हरिऔध) 'कबीर वचनावली' पृ0 5।*

15 *शाह, अहमद(रेवरेण्ड) 'द बीजक आफ कबीर', पृ0 1।*

16 *सिंह, वासुदेव 'कबीर साखी सुधा', अभिव्यक्ति प्रकाशन, संस्करण–सन् 1991, पृ0 11।*

17 *राम, आसा 'गुरु ग्रंथ साहब', पद 26।*

18 *तिवारी, पारसनाथ(संपा0) 'कबीर ग्रन्थावली', पद 12, पृ0 9।*

19 *वर्मा, रामकुमार 'संत कबीर', पद 54, पृ0 57।*

20 *द्विवेदी, हजारी प्रसाद 'कबीर' प्रस्तावना, पृ0 11।*

21 *मेकॉलिफ 'द सिक्ख रेलिजन', पृ0 123।*

22 *तिवारी, पारसनाथ(संपा0) 'कबीर ग्रन्थावली', पद 19।*

23 *वर्मा, रामकुमार 'संत कबीर', पृ0 122।*

24 *वही, पृ0 123।*

25 *कबीर वाद ..... साखी 37/2।*

26 वही, पद 37/4।
27 सिंह, शुकदेव 'कबीर बीजक', सबद 77, संस्करण–1972, पृ0 137।
28 वही, भूमिका, पृ0 10।
29 दास, नाभा 'भक्तमाल', छप्पय 31, पृ0 12।
30 वर्मा, रामकुमार 'संत कबीर', प्रस्तावना, पृ0 142,।
31 वेस्टकॉट, 'कबीर एण्ड कबीर पंथ', पृ0 23।
32 सिंह, जयदेव ठाकुर; सिंह, वासुदेव 'रमैनी', पृ0 80।
33 वही, पृ0 98।
34 शुक्ल , रामचन्द्र (आचार्य) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ0 49 , संस्करण 1981।
35 वेस्टकॉट 'कबीर एण्ड कबीर पंथ', पृ0 23।
36 वही, पृ0 23।
37 दास, श्याम सुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', भूमिका, संस्करण–1928 ई0, पृ0 47।
38 बर्थवाल, पी0 डी0 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय', संस्करण–1951 ई0, पृ0 114।
39 वर्मा, रामकुमार 'कबीर का रहस्यवाद', संस्करण–1972 ई0, पृ0 19।
40 द्विवेदी, हजारी प्रसाद 'कबीर', संस्करण–1941 ई0, पृ0 126।
41 शाह, अहमद(रेवरेण्ड) 'द बीजक ऑफ कबीर', संस्करण–1917 ई0, पृ0 35।
42 उपाध्याय, अयोध्या सिंह 'कबीर वचनावली', संस्करण–1916 ई0, पृ0 64।
43 चतुर्वेदी, परशुराम 'कबीर साहित्य की परख', संवत् 2011, पृ0 89।
44 वही, पृ0 92।
45 दास, श्याम सुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', संस्करण–1928 ई0, पद 49, पृ0 175।
46 वही, पद 48, पृ0 174।
47 वही, पद 37, पृ0 168।
48 वही, अष्टपदी रमैणी, पृ0 587।
49 वही, पद 18, पृ0 279।
50 वही, पद 16, पृ0 277।
51 वही, अष्टपदी रमैणी, पृ0 387।
52 वही, पद 67, पृ0 184।
53 वही, पद 67, पृ0 184।
54 वही, पद 55, पृ0 178।
55 वही, पद 58, पृ0 180।
56 वही, पद 19, पृ0 247।
57 वही, पद 18, पृ0 246।
58 उपाध्याय, बल्देव 'भारतीय दर्शन', पृ0 456।
59 वही, पृ0 457।
60 वही, साखी, पद 24, पृ0 42।
61 द्विवेदी, हजारी प्रसाद 'संत कबीर', राग गौड़, पद 5, पृ0 168।
62 दास, श्याम सुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', साखी 50, पृ0 46।
63 उपाध्याय, बल्देव सिंह 'भारतीय दर्शन', पृ0 45।
64 दास, श्याम सुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', अष्टपदी रमैनी, पृ0 386।
65 सिंह, शुकदेव 'बीजक', पृ0 181।
वही, सबद 27, पृ0 113।
66 दास, श्याम सुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', पद 45, पृ0 84।
67 वही, साखी 10, पृ0 54।
68 वही 'कबीर ग्रन्थावली', पद 56, पृ0 176।

69 बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय', पृ0 131।
70 गुप्त, माता प्रसाद 'कबीर ग्रन्थावली', पद 32, पृ0 164।
71 वही, पद 38, पृ0 168।
72 वही, पद 18, पृ0 159।
73 तिवारी, पारसनाथ 'कबीर ग्रन्थावली', पद 158, पृ0 92।
74 द्विवेदी, हजारी प्रसाद(आचार्य), 'कबीर', पृ0 46।
75 'शारदा तिलकम्', प्रथम पटल, श्लोक 7–8–9।
76 वुडरोफ, जॉन(सर) 'इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्र शास्त्र', पृ0 8।
77 तिवारी, रामचन्द्र, 'कबीर मीमांसा', संस्करण 1999, पृ0 130।
78 दास, श्याम सुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', साखी 13, पृ0 331।
79 वही, चितावणी कौ अंग, साखी 27, पृ0 92।
80 वही, राग केदारौ , पद 38 , पृ0 333।
81 वही, पद 11 , पृ0 199।
82 'कबीर वाणी', राग आसावरी, पद 39, पृ0 291।
83 दास, श्याम सुन्दर(बाबू) 'कबीर ग्रन्थावली', राग आसावरी, पद 33, पृ0 285।
84 तिवारी, पारसनाथ 'कबीर ग्रन्थावली', पद 54, पृ0 31।
85 गुप्त, माता प्रसाद 'कबीर ग्रन्थावली', साखी 1, पृ0 107।
86 वही, पद 15, पृ0 153।